www.thearyasamaj.org

ओ३म्

वार्षिक शुल्क 50/- रु.
आजीवन 500/- रु.
इस अंक का मूल्य 5/- रुपये

आर्य प्रेरणा

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(आर्यसमाज राजेन्द्र नगर का मासिक मुख-पत्र)

दूरभाषः 011-25760006 Website - www.aryasamajrajindernagar.org

वर्ष-6 अंक 11, मास नवम्बर 2013 विक्रमी संवत् 2070, दयानन्दाब्द 189 सृष्टि संवत् 1960853112

परामर्शदाता - श्री अशोक सहगल, प्रबन्धक - श्री सतीश मैहता, - सम्पादक डॉ. कैलाश चन्द्र शास्त्री

परमपिता परमात्मा का आदेश-मनुर्भव

अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है, भारत मानवता की जन्मभूमि है। नर का तन मिलना हमारे कर्मों के फल के अनुसार ईश्वरीय विधान है। परन्तु विशेष विचारणीय यह है कि नरतन की सार्थकता उसकी पूर्णता तभी है जब उसमें तनमन की भी प्रतिष्ठा हो।

मनुष्य मननशील है। वह कर्मों को बुद्धि पूर्वक विचार कर करता है। मत्वा कर्माणि सीव्यति हम त्याग का, वैराग्य का, संयम का उपदेश देने के इस मत से सहमत नहीं है कि वह मन करे क्योंकि मन है तो मनन होगा, मन की उपमा हम घर के भण्डार से दे सकते हैं जहाँ हम आवश्यकता का सामान एकत्र करते हैं। मन में हम दूसरों से जो प्रेम, संवेदना, सहानुभूति और मैत्री प्राप्त करते हैं, ये सभी सुरक्षित रहते हैं। जिस प्रकार घर की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने वाली एक गृहिणी भण्डार गृह में क्या हो, क्या नहीं हो निर्णय अपने विवेक से करती है, उसी प्रकार बुरे मन को नियन्त्रण में रखे यह बात तो समझ में आ सकती है, जो कुछ भी मधुर, प्रिय हो, उपयोगी हो वह मन में अवश्य रखा जाये। जो हमारे काम के नहीं जिसमें कटता हो वह हम दूर फैंक दें। **"तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु"** आदि मंत्रों का सार तभी सार्थक हो सकता है जब हम अप्रिय, घृणा, द्वेष आदि दुर्गुणों को मन से निकालें और हित चिन्तन को प्रश्रय दें।

वेद ने मनुष्य की यही इति कर्त्तव्यता नहीं मानी है कि वह केवल मनुष्य को वही हितचिन्तन की परिधि में ले हमें तो समभाव और दयाभाव अन्य प्राणियों में भी बांटना है, यह हमें देवत्व की कोटि में लाता है। यही नहीं हम जितनी अवधि संसार में व्यतीत करते हैं, बौद्धिक, मानसिक, सामाजिक जो भी हमारा उपार्जन है उसका श्रेय मात्र हमारा ही नहीं है इसके लिए हम अन्यों के भी ऋणी हैं, इस ऋण से उऋर्ण होने का मार्ग यही है कि हम इस क्रम में व्यतिक्रम न आने दें। और इसके लिए हम जोतिर्मय पथों की रक्षा करने वाली, जागरण प्रहरी बन सके ऐसी उत्तम सन्तान भी संसार को देकर जायें।

गमों की आँख से आँसू निकाल कर देखो
बनेंगे रंग किसी पर डाल के देखो
तुम्हारे हृदय की चुभन कम होगी जरूर
किसी के पैर का कांटा निकालकर देखो।।
दुःख दर्द भरी आँखों से देखना सीखो
हर गांव की मिट्टी में अरमान देखना सीखो
भौतिक विज्ञान में ही भगवान देखने वालो,
पहले इन्सान में भगवान देखना सीखो।।

यदि अग्नि एवं वायु में गतित्व तथा जल में जलत्व न हो तो क्या आप उसे अग्नि, जल या वायु कहेंगे? उत्तर मिलेगा नहीं। ठीक इसी तरह मानव में मानवता न हो तो वह मनुष्य नहीं कहलायेगा। वैदिक संस्कृति विश्ववारा संस्कृति है- इसका उद्देश्य है मानव का निर्माण। परमपिता का आदेश है- मनुर्भव।

ओ३म् तन्तुं तन्तन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्वणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।। ऋग्. 10/5.3/6

निजकर्म को करते हुए
आलोक का अनुगमन करो
विज्ञानप्रद आलोक के
शुभमार्ग की रक्षा करो
उलझन रहित कर्त्तव्य के
तुम विश्व विस्तारक बनो
मानव बनो! मानव बनो!
तुम दिव्यतम मानव बनो।।

जहाँ तक इस मंत्र की महत्ता का प्रश्न है कि यदि वेद में केवल यही एक मंत्र होता तो भी अन्य ग्रन्थ की तुलना में वेद ही सर्वोपरि स्थान का अधिकारी होता। आज विश्व में कोई ईसाई बनाने पर शक्ति लगाता है, कोई बौद्ध बनाने में, कोई मुसलमान बनाने में तत्पर है। वेद कहता है- 'मनुर्भव' मनुष्य बन। ईसाई बनने पर व्यक्ति केवल ईसाई

'आर्य-प्रेरणा' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

www.thearyasamaj.org

को ही ममत्व से देखेगा। मुसलमान बनने पर वह केवल मुस्लिम व्यक्ति से ही प्यार करेगा किन्तु मनुष्य बनने पर तो सारा संसार उसका परिवार होगा, "वसुधैव कुटुम्बकम्" वसुधा ही कुटुम्ब समान होगा सब पर हमारा एक समान प्यार होगा।

एक बाप के बेटे हैं सारे, एक हमारी माता
दाना पानी देने वाला एक हमारा दाता।।
फिर किस मूरख ने लडना तुम्हें सिखाया।
सबसे कर लो प्रेम जगत में कोई नहीं पराया।।

जातिवाद, एवं सम्प्रदायवाद के दलदल से हटकर हम मानवतावाद को जीवन में लायें।

अग्नि हमें उन्नति की राह दिखाती है, विरोध के मध्य भी प्रलोभन की चमक से आतंक की निरंकुशता से हम दबे नहीं, वरन् हमारा स्वर और भी प्रखर और मुखर हो ये हमें अग्नि से सीखना है। वह हमारी परीक्षा लेती है, उसके ताप से भोजन पकाकर हम स्वयं तो खा लेते हैं लेकिन वह यह भी जानना चाहती है कि वैसा ही भोजन दूसरों को प्राप्त कराने की कितनी व्यग्रता हमारे हृदय में है।

वेदोद्धारक देव दयानन्द महाराज मनुष्य की परिभाषा बताते हुए कहते हैं-

"मनुष्य उसी को कहना जो मननशील हो स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। पापी, दुष्ट अन्यायी, अत्याचारी चाहे कितना ही सशक्त हो, चाहे चक्रवर्ती सम्राट भी क्यों न हो उससे कभी न डरे उसका प्रतिवाद, आप्रिया-चरण सदा करे। जहाँ तक हो सके अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी चले जावे, परन्तु इस मनुष्यपन-रूप धर्म से पृथक कभी न होवे।"

मानवता का दूसरा नाम है, दूसरों के प्रति हम कितने संवदेनशील हैं? क्या हम वास्तव में ऐसे मर्द हैं जो किसी का दर्द लेकर हमदर्द बन सकें?

दर्द दूसरों को बांटे शैतान वही है।
दर्द दूसरों का बांटे इन्सान वही है।।

हमारा अपना शरीर हमें परोपकारमयी मानवता का पाठ पढाने वाला सर्वोत्तम शिक्षक है, शरीर के किसी भी अंग में कोई आघात लगता है तो कष्ट का अनुभव सारा शरीर करता है ध्यान उसी की ओर रहता है। पेट में स्वयं कोई विकार न भी हो किन्तु यदि किसी अन्य अंग में विकार हो तो वह भी अपनी संवेदनशीलता इस रूप में व्यक्त करता है कि वह भी अपने भोजन के प्रति अनिच्छा व्यक्त करता है, यह अनुभूत है। और शरीर के प्रत्येक अंग की यह विशेषता है कि जो भी उसका ग्राह्य है वह औरों के लिए त्याज्य नहीं है, वरन् पौष्टिकता के रूप में वह सभी का भाग बन जाता है। इससे बडा समाजवाद और मानववाद का पाठ आदमी और कहाँ पढेगा

भातृप्रेम का अनुठा उदाहरण हमें मिलता है। एक भाई दूसरे भाई के लिए जान देने के लिए तैयार है। गेंद की तरह गद्दी को ठोकर मारने वाले भाई आज कहाँ है?

जब मेघनाद के बाण से लक्ष्मण मूर्छित हो गये तब राम विलाप करते हुए कहते हैं

देशे-देशे कलत्राणि देशे-देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।।

देश में मुझे जगह-जगह मित्र बन्धु-बान्धव मिल सकते हैं परन्तु मुझे कोई ऐसी जगह दिखाई नहीं देती, जहाँ छोटा भाई मिल जाये। जब लक्ष्मण को होश आया तो लक्ष्मण से पूछा गया लक्ष्मण! तुम्हें कितनी चोट लगी? लक्ष्मण कहते हैं-

इयन्मात्रमहं वेद्मि स्फुटं योवेत्ति राघवम्।
वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम्।।

लक्ष्मण ने कहा कि मैं तो केवल बाण के घाव को ही जानता हूँ चोट तो राम के हृदय में हुई है। मैं तो केवल मूर्छित हुआ हूँ वेदना कितनी हुई है यह राम से पूछो। कितना अगाध स्नेह है। मानवता, भातृप्रेम का ऐसा दिव्य उदाहरण और कहाँ मिलेगा?

आर्य समाज के दस नियमों में ईश्वर-अस्तित्व, ईश्वर उपासना, वेदनिष्ठा, सत्यनिष्ठा, धर्माचरण विश्व का उपकार, यज्ञ भावना सद्व्यवहार, विद्या-प्रेम, सर्वोदयभाव, वैदिक समाजवाद, व्यष्टि और समष्टि का समन्वय आदि मानव धर्म के मूलाधार स्वर्णिम सूत्रों का समावेश है। ये सभी सूत्र मानव धर्म के प्राण है अतः आर्य समाज कोई मत मजहब नहीं अपितु विश्व धर्म या मानव धर्म का प्रचारक संगठन है।

प्रत्येक को अपनी उन्नति से सन्तुष्ट न होना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

सबसे प्रति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए। कितना प्यारा चिन्तन है।

पावक की लपटों में पडकर सोना कुन्दन बन जाता है
भाव शुद्ध हो तो छोटा सा धागा बन्धन बन जाता है।
संघर्षों की भट्टी में तपना छोटी बात नहीं
त्याग तपस्या से मानव माथे का चन्दन बन जाता है।।

महर्षि दयानन्द में मानव के प्रति करूणा भाव चरमोत्कर्ष पर था, सन्यासी होने पर भी उन्हे संसार के जीवों को तथाकथित वैरागियों की भांति उपेक्षित कर दया और आनन्द के अमृत से बंचित नहीं रखा। सच तो यह है कि वह मानवता के उद्धारकों में इस दया और आनन्द पात्र प्राणिमात्र को बनाकर वह मूर्धन्य स्थान के अधिकारी बन गये हैं।

संस्कृति के हित कट जाये वो सर मुझको दे,
गरीबों को जो उठाले वो हाथ मुझको दे।
तड़प उठे देखकर पराई पीड़ा को,
दिल वो देव दयानन्द सा नाथ मुझको दे।।

अनूपशहर में दुष्ट ने स्वामी जी को विषयुक्त पान दिया चबाने से पता लगा तो उन्होंने न्योलि क्रिया द्वारा बमन कर विष निकाल दिया। वहाँ सर सैयद मुहम्मद तहसीलदार आपका भक्त था। उसने हत्यारे को पकड़कर बन्दीगृह में डाल दिया। कुछ समय के बाद स्वामी जी की सेवा में आया तो स्वामी जी ने देवसुलभ अप्रतिम दयालुता का परिचय देते हुए यह स्मरणीय वाक्य कहा कि मैं संसार को कैद करने नहीं हूँ अपितु कैद से छुडाने आया हूँ।

संसार विधि के रूप में ऋषि ने मनुष्य के लिए संसार में किस प्रकार मनुष्य नर से नरोत्तम उसका आचरण कैसा हो इसके लिए उपयोगी आवश्यक निर्देशिका प्रस्तुत की जिससे मनुष्य संस्कारशील बने, तथा पशुत्व से मुक्त होकर मनुष्यत्व के गुणों से युक्त होकर अन्तिम अवस्था देवत्व की प्राप्ति करे।

एक बार जर्मनी के पत्रकारों ने नेता जी सुभाष चन्द्र बोस से साक्षात्कार में कुछ प्रश्न पूछे थे कि यदि संसार से अमेरिका

www.thearyasamaj.org

समाप्त हो जाय तो क्या हानि होगी? नेता जी ने जबाब दिया कि यदि अमेरिका समाप्त हो जाय तो विश्व की दौलत समाप्त हो जायेगी। पत्रकारों ने पूछा यदि 'जर्मनी' नष्ट हो जाय तो क्या होगा? नेता जी कहने लगे यदि जर्मनी नष्ट हो जाये तो दुनियाँ से विज्ञान समाप्त हो जायेगा। फिर पूछा गया कि यदि 'ईराक' समाप्त हो जाय तो? उत्तर मिला कि अगर 'ईराक समाप्त हो गया तो देशभक्ति समाप्त हो जायेगी। क्योंकि ईराक के लोग पहले से ही देशभक्ति में प्रसिद्ध हैं। फिर पत्रकारों ने पूछा कि यदि यूरोप समाप्त हो जाय तो फिर क्या होगा? सुभाषचन्द्र कहते हैं कि दुनियाँ से सुन्दरता समाप्त हो जायेगी। अन्त में पत्रकारों ने पूछा कि यदि भारत नष्ट हो जाय तो? तब नेता जी सुभाष चन्द्र कहते हैं कि यदि भारत समाप्त हो जाय तो दुनियां से मानवता सदा के लिए नष्ट हो जायेगी।

दुनियां को मानवता का पाठ पढाने वाली यह वैदिक संस्कृति है।

जिसको मेहनत से बहाना पसीना जाता है
फटा आंचल दुःखी दुर्बल का सीना आता है।
चाहता और के जीने में जो अपना जीना
सच तो यह दुनियाँ में उसको ही जीना आता है।।

परन्तु आज चारों ओर अशान्ति के बादल मंडरा रहे हैं जिधर देखो उधर ही त्राहि-त्राहि की आवाज से आकाश गुंजयमान हो रहा है इसका कारण स्पष्ट है कि हमने 'मनुर्भव' द्वारा दिव्य वैदिक आदेश की न केवल उपेक्षा ही की वरन् इसके प्रति हमारी आपराधिक सर्वथा अक्षम्य अवज्ञाशीलता रही है।

दुष्परिणाम यह है कि जिन लोगों के बारे में स्त्री पूर्णतः आश्वस्त थी कि उनकी दृष्टि इतनीपतित है अपना उसका शरीर ही नहीं उनसे भी अपना वह अपनी अस्मिता की रक्षा की आशा नही कर सकती।

एक समय था घोर घने जंगल में जाती हुई महिला का जानवर से डर लगता था, इंसान से नहीं शायद जानवर मुझे खा जायेगा, इंसान मेरी रक्षा करेगा। परन्तु आज स्थिति यह है कि घोर घने जंगल में प्रवेश करती हुई महिला को जानवर से डर नहीं, अपितु इंसान से डर लगता है, शायद जानवर उसकी रक्षा करेगा, इंसान आज भक्षक बन गया है।

आइए हम सब लोग 'मनुर्भव जनया दैव्यंजनम् इस दिव्य आदेश का पालन करें, इसके मर्म को समझें मानव धर्म को अपना कर्म बनायें और यह संकल्प लें कि हम मानव बनेंगे ऐसे मानव जो दानव का अस्तित्व भूतल पर नहीं रहने देंगे।

"श्रेयांसि बहुविघ्नानि" श्रेष्ठ कार्य में विघ्न तो आते हैं, उससे घबराना नहीं है, ईश्वर का आदेश वेदवाणी का निर्देश 'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्" इसका पूर्णतः प्रचार प्रसार करने में संलग्न हो जायें।

इस जिन्दगी में बन्दे
कुछ ऐसा काम कर जा
आया है इस जहाँ में
कुछ पैदा नाम कर जा।
निर्माणों के पावन युग में
हम मानव निर्माण न भूलें
स्वार्थ साधना की आंधी में
वसुधा का कल्याण न भूलें।

तुम न संसार को
श्मशान बनाना सीखो
बल्कि अभिशाप को
वरदान बनाना सीखो।
ठहरो विज्ञान को
भगवान समझने वालो
पहले इन्सान को
इन्सान बनाना सीखो।।

डा. राजेन्द्र मुनि ने कहा है कि जन बनना तो आसान है मगर सज्जन बनना मुश्किल है। जैसे-सभी वनों में चन्दन नहीं पाया जाता सभी पहाड़ों में ओषधियाँ दुर्लभ है वैसे ही मनुष्यो में मनुष्यता (सज्जनता) का मिलना कठिन है।

जीवन में दुर्गुणों को अपनाना आसान है मगर सद्गुणों को धारण करना कठिन कार्य है। व्यक्ति के कार्यकलापों से ही उसकी पहचान बनती है महाभारत में कौरव पुत्र दुर्योधन का नाम वस्तुतः सुयोधन था पर दुर्जन वृत्ति के चलते दुर्योधन प्रचलित हो गया।

दीपक जलकर ही रोशनी देता है सामग्री जलकर ही सुगंध देती है सज्जन कष्ट सहकर भी, आगे बढते हैं जो बीज में दबाकर मिट्टी में नहीं मिलाया जाता वो विकसित होकर फल नहीं दे पाता जो मानव कष्टों को नहीं झेलता वो भी जीवन में विकास नहीं कर पाता।

चन्दन मिटकर भी अपनी सुगधि नहीं छोड़ता तिल मिटकर भी तेल देते हैं। वृक्ष पत्थर खाकर भी फल देते हैं तो मानव को चाहिए जीवन प्रत्येक दिशा में अपने मानवता के गुणों को प्रदान करता रहे।

मानव का कर्तव्य है कि मुसीबत में फँसे मानव की सहायता करे। यदि कोई पीडाग्रस्त हो तो उसकी पीड़ा को दूर करे, भूले राही को सद्मार्ग दिखाए दवा बनकर कार्य करता हो तो उसी का जीवन सफल माना जाता है।

(कृपया लेखक अपना नाम भेज देवें)

शुभारम्भ

आर्य समाज राजेन्द्र नगर के प्रांगण में बी.एल. कपूर अस्पताल के सौजन्य से निशुल्क फैमिली मेडिसिन ओ.पी.डी. का शुभारम्भ 1.11.2013 प्रातः 9 बजे विधिवत मन्त्रोच्चारण के साथ किया गया। इस अवसर पर बी.एल. कपूर अस्पताल के चिकित्सक तथा आर्य समाज के पदाधिकारी एवं गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। आर्यसमाज के प्रधान श्री अशोक सहगल जी ने सभी चिकित्सकों का स्वागत किया। मन्त्री श्री सतीश मैहता जी ने सबका परिचय देकर बी. एल. कपूर अस्पताल का एवं चिकित्सकों का आभार प्रकट किया। यह प्रकल्प समाज के लोगों की सुविधा के लिए तथा विशेष कर वे लोग जो धनाभाव के कारण चिकित्सा नहीं करवा पाते उनके लिए प्रारम्भ किया गया है, जिससे अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हो सके। यह सेवा प्रतिदिन प्रातः 9 से 12 बजे तक सोमवार से शनिवार तक होगी। आप अधिक से अधिक संख्या में इस सेवा का लाभ उठायें।

-मंत्री

धन्यवाद

डॉ. म्रदुल कौशिक जी बी.एल. कपूर अस्पताल के वरिष्ठ योग्य चिकित्सक हैं। आप बहुत ही विनम्र, सुशील एवं सेवाभावी हैं। आपको आर्य विचारधारा अपने पूज्य पिताजी से विरासत में मिली है। आर्यसमाज राजेन्द्र नगर के छात्रवृत्ति कोष में आपने 25000/ रु. सात्विक दान दिया है। परमात्मा आपको एवं आपके परिवार को दीर्घायु, उत्तम स्वास्थ्य तथा शिव संकल्प प्रदान करे, जिससे आप अधिक से अधिक सेवा कार्य कर सकें।

-श्री सतीश मैहता, मन्त्री

www.thearyasamaj.org

ओ३म्

सम्पादकीय

देवासुर संग्राम

डा. कैलाश चन्द्र शास्त्री

मनुष्य समाज में आदिकाल से लेकर अब तक दो प्रकार के लोग सदैव रहते हैं। एक हैं– रास्ता बनाने वाले या रास्ता साफ करने वाले दूसरे वे हैं– रास्ते में पत्थर डालने वाले या रास्ता बिगाडने वाले। स्वामी दयानन्द प्रथम एवं उत्तम कोटि के व्यक्ति थे जिन्होंने आजीवन दूसरों के लिए रास्ता बनाया, लोगों को सच्चा मार्ग दिखाया। दूसरा पापी जगन्नाथ था जिसने ऋषि दयानन्द की हत्या की, सच्चाई का बाधक बना। स्वामी श्रद्धानन्द ने रास्ता बनाया, अब्दुल रशीद ने रास्ता बिगाड़ा। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम एवं योगेश्वर श्रीकृष्ण मार्ग निर्माता थे एवं दूसरी तरफ रावण एवं कंस मार्ग विध्वंसक। पृथ्वीराज चौहान देशरक्षक था तो जयचन्द गद्दार था। जो लोग मनुष्य समाज की रक्षा करते हैं वे देव हैं, वे मार्ग बनाने वाले हैं। जो लोग मनुष्य समाज को बर्वाद करते हैं, वे राक्षस हैं और वे ही मार्ग बिगाडने वाले हैं।

सृष्टि के आदि से लेकर अब तक कोई भी अशिक्षित या गरीब व्यक्ति रावण, कंस या जयचन्द नहीं बना। जिनते भी रावण, कंस, दुर्योधन एवं जयचन्द इस देश में पैदा हुए एवं हो रहे हैं वे सभी पढ़ लिखे शिक्षित एवं सम्पन्न थे। फिर भी अंहकार एवं निजी स्वार्थ के कारण इन लोगों ने न केवल अपना जीवन बर्वाद किया अपितु समाज का भी सत्यनाश कर दिया। स्वामी दयानन्द ने इसी लिए दुर्योधन को गोत्र हत्यारा कहा है। श्रेष्ठ मानव आर्य है एवं दुष्ट व्यक्ति दस्यु है।

मानव जगत् इन दोनों विचारधारा के संघर्ष को गीता के 16 वें अध्याय में दैवी और आसुरी प्रकृतियों के बीच कश्मकश का रूप प्रकट किया गया है। इन दोनों प्रकृतियों का संग्राम सदा चलता रहता है। श्लोक 9 में बताया गया है– आसुरी प्रवृत्ति के लोग मनुष्य जाति के शत्रु होते हैं उनकी अपवित्रता, चालाकी और दम्भ संसार में विनाश लाते हैं। दैवी प्रकृति वाले संसार का भला करते हैं। निर्भयता, शौच, सत्य, आदि उनके गुण होते हैं। संसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो बीज के समान अपने आपको विनष्ट करके बड़े फलदार वृक्ष पैदा करते हैं। बहुत से ऐसे हैं जो दूसरों का नुकसान करके खुश होते हैं। इन दोनों प्रकृतियों का संघर्ष संसार में सदा जारी रहता है। मनुष्य के अन्दर भी हर समय दोनों प्रकार के भावों का द्वन्द्व युद्ध होता रहता है। जो देव होते है वे दिव्यगुणों को विकसित कर अपना एवं संसार का उपकार करते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती एक युगान्तकारी महा मनीषी थे। प्रतिवर्ष दीपावली पर्व के दिन हम उनका निर्वाण दिवस मनाते हैं। हम उनके व्यक्तित्व से कौनसा एक गुण धारण कर हम अपना जीवन सफल बना सकते हैं। यह चिन्तनीय है। ऋषि का व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन राष्ट्रीय जीवन अद्वितीय था।

आइये ऋषि निर्वाण दिवस पर प्रेरणा लें एवं संकल्प करें कि हम सभी ज्योतिष्मत पथ की रक्षा करने वाले होंगे।

"जीवन संध्या"

जीवन संध्या अर्थात् बुढ़ापा

जिस प्रकार सूर्य दिन को प्रकाशित कर सायं को अस्त हो जाता है इसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी संसारिक दुख सुख एवं संर्घषों से जूझते हुए बुढ़ापा में परिणित हो जाता है इस के बारे कुछ ऐसी धारणा भी है– **जो आकर चली जाए वह जवानी देखी जो आकर ना जाए वह बुढ़ापा देखा,** इस में सन्देह नहीं कि जवानी की आकस्मिक मौत दुखदायी होती है, हां बुढ़ापे की मौत का शोक कम होता है। आज के युग में अखबार, मीडिया एवं टी.वी. चैनलों वाले ऐसे-ऐसे दृश्य प्रस्तुत करते हैं कि बुढ़ापे की दुर्दशा कैसे होती है जो इन्सान को अपनों से बेगाना बना देती है तो बुर्जुगों की सोच पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है।

बुढ़ापे में सूरत पर तो असर पड़ता है चाहे कितने सौन्दर्य साधन आज बिक रहे हैं मगर सीरत अच्छी हो तो गुजारा अच्छा चल जाता है। दुख सुख तो हमारे अपने कर्मों की प्रतिक्रिया है उसमें समभाव रह कर प्रवृति से निवृति की ओर चलना बुढ़ापे को सुखी बनाना है। इन तीन सूत्रों को अपना कर बुढ़ापा सुखी बनाया जा सकता है किसी की उपेक्षा मत करो, और प्रतीक्षा में ना रहो। स्वयं काम करने का प्रयास, उत्साह पूर्वक आगे बढ़ने की जिज्ञासा मनुष्य जीवन को सुखमय बना देता है। हर वस्तु के अच्छे बुरे पहिलु होते हैं बुढ़ापे की भी अपनी विशेषताएं हैं अगर जीवन में सन्तोष हो, और खान पान का ध्यान रख कर स्वास्थ्य की तरफ विशेष ध्यान दिया जाए जैसा कि आर्य समाज के नियमों में सब से पूर्व शारीरिक उन्नति की तरफ ध्यान दिया गया है साथ में हाथ फैलाने की आवश्यकता ना हो तो इस समय आत्मिक उन्नति की तरफ अधिक ध्यान दिया जा सकता है। सब तरफ की उलझनों से इन्सान मुक्त हो जाता है जितना भगवान ने दिया है उसी को उल्लास के साथ आनन्द मनाएं। अपने जीवन को व्यस्त रख कर दूसरों को भी सहारा दे सकते हैं। सेवा सिमरन सत्संग व स्वाध्याय इस समय बहुत अच्छे ढ़ंग से कर सकते है। सेवा में आत्मिक शान्ति सिमरन से परमात्मा का धन्यवाद, सत्संग से अच्छे विचार मिलते हैं। स्वाध्याय तो आप की मानसिक शक्ति का विकास करता है। हमें याद है हमारी नानी दादी कभी खाली नहीं बैठती थी सोनहलवा, बड़ियां, तरह-तरह के मीठी नमकीन मिष्ठान्न पता नहीं क्या-क्या बनाती रहती थी उनके अनुभवों से हमने बहुत कुछ सीखा। सयुक्त परिवारों के टूटने से पुरानी एंव भावी पीढ़ी के विचारों मे साम्जस्य तो रहा नहीं कुछ भौतिक युग की उन्नति का गहरा प्रभाव वा पश्चमी सभ्यता का अन्धाधुंध अनुकरण बहुत सी ऐसी बाते हैं जिन्होंने इस गैप को बढ़ा दिया है। अतः पहल बड़ों को करनी चाहिए, प्रीतिपूर्वक व्यवहार एवं अपने जीवन के अनुभव को उन्हें सुनाकर, थाप कर नहीं उन्हें अपने नज़दीक लाया जा सकता है। यही आज के युग की मांग है।

–अमृत आर्या

www.thearyasamaj.org

प्रफुल्ल मन स्वस्थ-जीवन

– *श्री रामप्रसाद शर्मा 'प्रसाद'*

वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षम्।
यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति।।

अर्थात् जो हमारे इस मन को हानि पहुँचाता है, उसे इस प्रकार काट डालूँ, जैसे कुल्हाड़ी वृक्ष को काटती है।

उपरिलिखित वेदवाक्य हमारे मानसिक-स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले विकारों की ओर इंगित करता है। प्राचीन काल से ही हमारे सन्त-महात्माओं, ऋषियों-मुनियों ने मन को इन विकारों से दूर रखने का हमें उपदेश दिया है। चित्त की शुद्धि आवश्यक है। भगवान् बुद्ध ने भी चित्त की शुद्धि पर बल दिया था, उनका कहना था-

सर्वपापरपाकरणं कुशलस्योपसम्पदा।
स्वचित्तपर्यवदानं तद्बुद्धानुशासनम्।।

अर्थात् सम्पूर्ण पापों का परित्याग करके पुण्यलाभ करो। अपने चित्त की शुद्धि करो। यही भगवान् बुद्ध का आदेश है।

चित्त की शुद्धि से मानव-जीवन पूर्ण होता है। मानवता का तिरस्कार नहीं हो सकता। महाभारत में मन और इन्द्रियों के संयम पर भी निम्न प्रकार से लिखा है-

सुखं दान्तःप्रस्वपिति, सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं पर्येतिलोकांश्च मनश्चास्य प्रसीदति।।

अर्थात् मन और इन्द्रियों के संयम से जिसने जीवन को सुव्यवस्थित बना लिया है, वह संयमी पुरुष सुख की नींद सोता है और प्रातःकाल सुख-पूर्वक जागता है। वह देश-देशान्तरों में भी सुखपूर्वक विचरता है और उसका मन सदा प्रसन्न रहता है।

मन चंचल प्रकृति का है। इसलिए अस्थिरता इसका स्वभाव है। जब तक यह अस्थिर अवस्था में रहता है, तब तक किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती । अतः कहा है-

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

अर्थात् अपने मन को एकाग्र कर लें और अन्त में-

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।

अर्थात् अपने मन को आत्मा में स्थित कर लें। किसी भी दूसरे विषय की चिन्ता न करें।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थात् मेरा मन जाग्रत अवस्था में दूर-दूर तक घूमता है, मेरे सोने पर भी यह मन उसी प्रकार दूर-दूर विचरता है, यह मन बहुत दूर जाने वाला, सब ज्योतियों में मुख्य ज्योति है- ऐसा मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो-बुरे संकल्पों वाला न हो।

मन, वाणी और कर्म से हमें पवित्र होना चाहिए। यह तभी सम्भव है, यदि हमारा मन शुभ संकल्पों वाला हो, यदि मन को ठीक मार्ग की तरफ लगाया जाए, तो कार्य सिद्ध हो सकते हैं। हमें मन को विषयों से दूर रखना चाहिए। तभी हमें मानसिक शान्ति प्राप्त हो सकती है। मन में जब विषयासक्ति हो जाती है, तो वह बन्धन में फंस जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है-

विहाय कामान् यः सर्वान्,
पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः,
स शान्तिम् अधिगच्छति।।

अर्थात् जो पुरुष (फल प्राप्ति की) सब कामनाओं को छोड़ (और) निष्काम भाव से युक्त होकर अपने कर्त्तव्य कर्म में लगा हुआ ममता और अहंकार से मुक्त रहता है, वह शान्ति को अवश्य प्राप्त कर लेता है।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों, ऋषियों-मुनियों तथा सन्त-महात्माओं की वाणी ने मन के विषय में अनेक जटिल-समस्याओं का समाधान दिया है। हमारा जीवन-मार्ग तभी उज्ज्वल बन सकता है, जब हम उनके बताये मार्ग पर चलें। हमें मानसिक-शान्ति तभी प्राप्त हो सकती है, जब हमारा मन प्रफुल्लित रहे।

हमारे प्रेरणा स्तम्भ

स्व. ओ३म् प्रकाश जी नांगिया

स्वर्गीय श्री ओ३म् प्रकाश जी नांगिया का जन्म 21 जुलाई सन् 1923 को डेरागाजी खां में हुआ। आप के पिता जी का नाम श्री जमीयत राय जी नांगिया था। बचपन में ही माता पिता का साया उठ गया इनका पालन पोषण इनकी बड़ी बहन ने किया जो कराची में रहती थी, जो वैदिक विचारों से पूर्ण थी। इनके बहनोई कराची आर्य समाज के मंत्री पद पर सुशोभित थी। पूर्व जन्म के संचित कर्मों का फल ही मानव जीवन की उपलब्धि है इनमें कुछ ऐसे ही तपः पूत होते हैं जो अपने गुण और आचरण से समाज में एक जीवन्त हस्ताक्षर के रूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, श्री ओ. पी. नांगिया ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थे।

देश विभाजन के बाद दिल्ली आ गये। एअर इंडिया में सेविस करते रहे एकाउन्टस् मैनेजर के पद से 1981 में रिटायर हुए। बैंकाक, मुंबई व दिल्ली में रहे बहुत ही ख्याति प्राप्त की, रिटायर होने के पश्चात आर्य समाज राजेन्द्र नगर से जुड़ गए एवं कई वर्षों तक मंत्री पद पर सुशोभित होकर सेवा करते रहे। सुख दुःख सहन करना ही उनके जीवन का उद्देश्य था वह दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत थे आर्य समाज की स्वच्छता व सुन्दरता पर बहुत ध्यान देते थे। आप बहुत ही सज्जन कर्मठ व उदार चित्त व्यक्ति थे। 21 अप्रैल सन् 1998 को संसार के बन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा की शरण में चले गये।

उनकी धर्म पत्नी सादा जीवन उच्च विचार की धनी, पवित्रात्मा श्रीमती राधा नांगिया जी उनकी विरासत को सम्भालकर आगे बढ़ा रही हैं एवं आर्य स्त्री समाज राजेन्द्र नगर की प्रधाना पद पर आसीन होकर सेवा कार्य कर रही हैं।

www.thearyasamaj.org

विद्या से अभिमान न उपजे

डॉ. शशि तिवारी

किसी समय की बात है कि गार्ग्य गोत्र का एक ब्राह्मण विद्या प्राप्त करने के बाद ग्राम में रहता था। उसकी माता का नाम बलाका था, इसलिए लोग उसे बालाकि नाम से जानते थे। गोत्र से गार्ग्य हो कर भी वह विद्या के मिथ्या अभिमान में चूर रहता था। वास्तव में उसने सम्यक् रूप से ज्ञान प्राप्त नहीं किया था। इसी कारण वह अपनी अविद्या को ही विद्या समझता था। बालाकि गर्वीला होने के कारण बिना अवसर देखे बहुत बोलता भी था।

उस समय काशी में अजातशत्रु नाम का एक राजा राज्य करता था। वह सत्त्वगुण-प्रधान वृत्तियों से सम्पन्न था। प्रजा में वह एक परम धार्मिक और तत्त्ववेत्ता ज्ञानी के रूप में जाना जाता था। एक बार गार्ग्य बालाकि भ्रमण करते-करते वाराणसी पहुंच गया। वह राजा अजातशत्रु से मिलने भी गया। काशिराज ने उसका यथोचित स्वागत और सत्कार किया। अपनी सेवा से संतुष्ट होकर बालाकि ने अजातशत्रु की जिज्ञासा के बिना उससे स्वयं ही कहा, 'राजन्! मैं तुम्हें ब्रह्म का उपदेश दूंगा।'

उन दिनों हज़ार तरह के राजकार्यों में व्यस्त रहे अजातशत्रु ने किसी तरह स्वयं को शिष्यत्व की मानसिकता में बदलते हुए गार्ग्य से कहा, 'भगवन्! आपने मुझको ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करने की बात की है, इसलिए मैं आदरभाव से आपको सहस्र गाएं भेंट में देता हूं।'

उपदेश सुनने के लिए उत्सुक हुए राजा अजातशत्रु को गार्ग्य ने अपना वक्तव्य उसी क्षण देना प्रारंभ किया। उसने कहा, 'यह जो आदित्य में पुरुष है, इसी की मैं ब्रह्म के रूप में उपासना करता हूं।' अजातशत्रु ने कहा, 'नहीं, नहीं, इस विषय में बात मत कीजिए।' राजा के कहने का तात्पर्य था कि 'यदि तुम कोई अन्य ब्रह्म जानते हो, तो उसका निरूपण करो, जिसे मैं पहले से ही जानता हूं, उसका नहीं'।

इसके बाद गार्ग्य ने कहा, 'राजन्। यह जो चन्द्रमा में पुरुष है, इसी की मैं ब्रह्म के रूप में उपासना करता हूं।' पुनः अजातशत्रु ने उसी तात्पर्य से कहा; 'नहीं, नहीं, इसकी बात मत कीजिए।'

गार्ग्य बालाकि एक के बाद एक-विद्युत् में, आकाश में, वायुमण्डल में अग्नि में, जल में पड़ने वाले प्रतिबिंब में, धूप में, छांव में, ध्वनि में, प्रतिध्वनि में, स्वप्न में, जागरण में, जागने वाले व्यक्ति की आंख में और अंदर व्याप्त रहने वाले पुरुषतत्त्व को ब्रह्म नाम देता गया। अजातशत्रु को इन सब तथ्यों से कोई संतोष नहीं हो रहा था, इसलिए वह साथ साथ ही इन सबका निराकरण भी करता गया।

अंततः गार्ग्य चुप को गया। तब अजातशत्रु ने कहा, 'बस, इतना ही क्या? गार्ग्य ने उत्तर दिया, 'हां, इतना ही है।' अजातशत्रु ने अपने विचार को प्रस्तुत करते हुए कहा, 'इतना जानने से तो ब्रह्म नहीं जाना जाता है। फिर तुम ऐसा गर्व क्यों करते हो कि मैं ब्रह्म का उपदेश करूंगा।' गार्ग्य ने मन ही मन अपना पराभव स्वीकार कर लिया था। वह राजा से प्रभावित हुआ। उसने अजातशत्रु से ही ब्रह्म का स्वरूप जानने का निश्चय किया।

आचार-विधि के अनुसार शिष्य को गुरु के समक्ष शिष्य की भावना से युक्त होकर जाना चाहिए। गीता (2.6) में अर्जुन ने भी यही कहा है, **शिष्यस्तेऽहं शाधि मा त्वां प्रपन्नम्,** अर्थात् 'हे ईश्वर! मैं आपका शिष्य हूं, आपकी शरण में आए हुए मुझ दास को उपदेश दीजिए।'

परंतु, गार्ग्य ने दो त्रुटियां की थीं। उसने न केवल स्वयं ज्ञान का मिथ्या अभिमान किया था, बल्कि जो शिष्यभाव से शरण में नहीं आया था, उसे स्वतः ही ज्ञान का उपदेश देने की बात की थी। अब वह अपने दोष समझ गया था। विधिपूर्वक शिष्य बनने के बाद, जानने की अभिलाषा से संपन्न होकर उसने राजा से कहा, 'मैं आपके प्रति उपसन्न (जिज्ञासा भाव से निकटतर) होना चाहता हूं, ठीक वैसे ही जैसे कोई शिष्य गुरु के प्रति होता है।' इस प्रकार गार्ग्य ने राजा अजातशत्रु से ही यह जाना कि 'ब्रह्म सचमुच आत्मानुभव के निरंतर विकास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'

बृहदारण्यक उपनिषद् (2.1) के इस उपाख्यान से सूचित होता है कि किसी भी व्यक्ति को यह दम्भ नहीं करना चाहिए कि उसे आत्मा का बोध पूरी तरह से हो चुका है। जो वास्तव में ज्ञानी होते हैं, वे अभिमान नहीं करते हैं। और विद्या का उपदेश तो उन्हें दिया जाना चाहिए जिनमें जिज्ञासाभाव हो। स्थान और काल की भी समीक्षा किए बिना विद्योपदेश नहीं करना चाहिए। अन्यथा 'अरण्य रोदन' की भांति सारे कर्म निष्फल हो जाते हैं।

महर्षि निर्वाण दिवस सम्पन्न

महर्षि निर्वाण दिवस (दीपावली) के उपलक्ष्य में 3.11.13 को आर्यसमाज राजेन्द्र नगर में प्रातः 8 बजे विशेष यज्ञ का आयोजन किया गया तत्पश्चात् समाज के सदस्य प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी आर्य केन्द्रीय सभा द्वारा आयोजित ऋषि निर्वाण दिवस पर आयोजित कार्यक्रम में बस द्वारा रामलीला मैदान पहुँचे। वहाँ समाज के सदस्यों ने ऋषि दयानन्द को पुण्यस्मरण कर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये।

श्रद्धांजलि

आर्य समाज के वरिष्ठ सम्मानित सदस्य श्री मनमोहन साहनी जी का दिनांक 4.11.2013 को 90 वर्ष की आयु में निधन हो गया। श्रद्धांजलि सभा 7.11.13 को आर्य समाज राजेन्द्र नगर में हुई। आचार्य गवेन्द्र शास्त्री, डॉ. कैलाश चन्द्र शास्त्री, श्री अशोक सहगल, श्री सतीश मैहता, श्री नरेन्द्र वलेचा, प्रिंसिपल मोहनलाल आदि गणमान्य व्यक्तियों ने श्रद्धासुमन अर्पित किये। स्वर्गीय साहनी जी ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त थे। आर्य समाज के सभी धार्मिक, सामाजिक कार्यक्रमों में आपका एवं आपके परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आपकी धर्मपत्नी स्व. पुष्पा साहनी जी इस आर्य समाज की आधार स्तम्भ थी। प्रभु दिवंगत पुण्यात्मा को शान्ति तथा सद्गति प्रदान करें।

www.thearyasamaj.org

ऋषि दयानन्द वाणी

– संग्रहकर्ता–कृष्णचन्द्र विरमानी

"देखो! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं। ईसाई मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुम से अपने घर की रक्षा, और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब, जब तुम करना चाहो। जबलों (तुम) वर्त्तमान और भविष्यत् में उन्नति–शील नहीं होते, तबलों आर्य्यावर्त्त और अन्य देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती, चेत रखो।"

(स.प्र.स. 11)

बच्चों के साथ बहुत लाड़ प्यार मत करो

"उन्हीं के सन्तान विद्वान् सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं.....जो माता पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं, वे जानों सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं, और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिलाके नष्ट–भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोष–युक्त तथा ताड़ना से गुण–युक्त होते हैं, और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़न से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता–पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या (और) द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रक्खें। (स.प्र.स. 2)

"सन्तान और विद्यार्थियों का जितना लाड़न करना है, उतना ही उनके लिये बिगाड़, और जितनी ताड़ना करनी है, उतना ही उनके लिये सुधार है। परन्तु ऐसी ताड़ना न करे कि जिससे अंग भंग वा मर्म में लगने से विद्यार्थी वा लड़के–लड़की लोग व्यथा को प्राप्त हो जायें।" (व्यवहार भानु)

परमात्मा कब प्रत्यक्ष होते हैं?

(1) "जैसे कानसे रूप और चक्षु से शब्द ग्रहण नहीं हो सकता, वैसे अनादि परमात्मा को देखने का साधन शुद्धान्तःकरण, विद्या और योगाभ्यास से पवित्रात्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे बिना पढ़े विद्या के प्रयोजनों की प्राप्ति नहीं होती, वैसे ही योगाभ्यास और विज्ञान के बिना परमात्मा भी नहीं दीख पड़ता। जैसे भूमि के रूपादि गुण ही को देख जान के गुणों से अव्यवहृत सम्बन्ध से पृथिवी प्रत्यक्ष होती है, वैसे इस सृष्टि में परमात्मा की रचना विशेष लिंग देख के परमात्मा प्रत्यक्ष होता है और जो पापाचरणेच्छा समय में भय, शंका (और) लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की ओर से है, इससे भी परमात्मा प्रत्यक्ष होता है।"

(स.प्र.स. 2)

(2) "इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है और जब आत्मा, मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकारादि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है, उसी क्षण आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका, और लज्जा, तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है, वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है, और जब जीवात्मा शुद्ध होके, परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है, उसको उसी समय दानों प्रत्यक्ष होते हैं।" (स.प्र.स. 7)

धर्म और अधर्म किसे कहते हैं?

"जो पक्षपात–रहित न्यायाचरण, सत्य–भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध हैं उसको "धर्म", और जो पक्षपात–सहित अन्यायाचरण, मिथ्या–भाषणादि, ईश्वराज्ञा भंग, वेद विरुद्ध हैं उसको "अधर्म" कहते हैं"।

(स्वमन्तव्यामन्तेव्यप्रकाश)

"वेद, स्मृति वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात वेद द्वारा परमेश्वर प्रतिपादित कर्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है, जैसा कि सत्य–भाषण, यह चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से 'धर्माधर्म' का निश्चय होता है"। (स.प्र.स. 3)

अहिंसा धर्म पर चलकर मनुष्य की क्या अवस्था हो जाती है?

" जब अहिंसा धर्म निश्चय हो जाता है तब (न केवल) उस पुरुष के नाम से वैर भाव छूट जाता है, किन्तु उसके सामने वा उसके संग से अन्य पुरुष का भी वैर भाव छूट जाता है"।

(ऋ.भा.भू. उपासना विषय)

परमेश्वर का नाम स्मरण कैसे किया जाये?

"परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है"। (स.प्र.स. 11)

परमेश्वर का कृपा–पात्र कौन बन सकता है?

परमेश्वर उपदेश करता है कि:–

"हे मुनष्य लोगो! जो मनुष्य सब का उपकार करने और सुख देने वाले हैं, मैं उन्हीं पर सदा कृपा करता हूँ, अर्थात् उनके लिये आशीर्वाद देता हूँ"।

(ऋ.भा.भू.)

ईश्वर की व्यवस्था में अधिक सुख किसे मिलता है?

"जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेगा उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा।"

(ऋ.भा.भू.)

कितनी उमर तक के बालकों के लिये नित्य–कर्म का विधान नहीं है?

"बालक, मूर्ख और छोटे होने के कारण माता–पिता के आधीन रहता है और आठ वर्ष की अवस्था तक उसमें धर्म–सम्बन्धी काम करने की योग्यता नहीं होती, इसलिये हमारे धर्म शास्त्रों ने ब्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) होने से पहिले बालकों के लिये नित्यकर्म का विधान नहीं किया है।"

(पूना का व्याख्यान 14)

रात्रि को भोजन करना कैसा है?

जैनियों के विषय में महर्षि कहते हैं:–

"रात्रि को भोजन न करना, ये..... ..बातें अच्छी हैं।"

(स.प्र. 12)

www.thearyasamaj.org

R.N. DEL BIL/2007/22120
DL (C)-14/1181/2011-2013

Date of Posting 12 & 13, S.R.T. Nagar, ND-55
Date of Publication 8-11-2013

ओ३म्

– गतांक से आगे

THE VEDIC LIGHT

RISHIS

(Swami Vidyanand Sarswati ji)

The supremacy of man among all beings takes its rise from his capacity of acquiring systematic and progressive knowledge; and the ultimate of that knowledge which is a realisation of truth that exists in and outside, is the all-knowing god. We may know it only imperfectly, but the very fact that it exists implies that it should be known. Our advancing knowledge in the sphere in which we seek to know the truth, confirms that truth is there. When we affirm the existence of truth we indirectly also affirm the existence of the consciousness in which alone truth can exist. If we cannot know it wholly, some being with the power of comprehension superior to ours must know it. That being is the all-knowing god. It is from Him that we get our first prompting to and glimpses of truth. Our intuitive knowledge in yangic vision is derived from Him today, as was knowledge at the beginning of human creation received from him by the primeval Rishies or sears. Rishies saw the mantras. What are they? Vibrations and pulsations from the heart of the Eternal. The Rishies (Agni, vayur, Aditya and Angira) received them at first hand; we talk and argue. They were men of direct knowledge, their souls being in tune with the vibrations of the world mind.

In the printed books of the Vedas we find the names of certain Rishies printed with the hymns or the verses. Western scholars hold the view that they were the authors or composers of those mantras. There are also mantras which contain in the text such names as Vasishta, Jamadagni, Kanva, Atri, Bharadwaj, Gautma, Vishwamitra etc. How could then Veda be eternal and Divinely revealed? Inter alia they also attempted to re-inforce their view by pointing out names of some countries and their rulers extant in the Vedic ballads. Such detailed lists have been compiled by Keith and Macdovell in their Vedic Index of names and subjects.

But these Rishies were seers (दृष्टा), not authors (कर्त्ता). Those who saw-realised the true meaning and import of the Vedic text, were regarded as Rishies. They were so called, because they came to such realisation during the course of meditation where they were, as if, face to face with the Lord.

Etymologically interpreted 'India', from the root 'A.D.' ( ) means one possessed of the highest power and glory.

Thus these Rishies are the genius among the people who gave us the expositions from time to time of the inner meanings of the revealed hymns. The reveals existed much prior to them. Of course, their elaborate expositions were not available to us. The Supreme Self is the creator of this vast phenomenal world, including our human complex, and simultaneously, from the same self, we have received the Sacred Word (the Veda) too. It was left to the ancient Rishies to work out the coherence and congruency between all that was given to us as revealed Word and the truths that lie hidden in the ever-changing phenomenal universe.

To Dayananda the entire Veda is not the mystic enigma alone. The Vedas take us gradually from the so obvious simple truths to the depths of transcendental mystic realities. The Vedas are for our today and tomorrow, both.

These Rishies picked up such names for christianing themselves from the Vedas because of their derivative meanings. It wasjust take the followers of a religion choosing from their scriptures or from a list selected names for their new-borns, even as we witness today.

It has already been explained that Sanskrit is known for its derivative interpretation of world. Thus interpreted they cease to refer to any particular person of place. For instance, the word Vishvamitra in the veda does not refer to any particular mythological king or rishi known by that name, but to any man who befriends all or is loved by all. Thus these substantives may be used as epithets for persons with corresponding attributes.

Etymologically interpreted 'India' from the root 'Idi' (इदि) means one possessed of the highest power and glory

All the ancient authorities in India and traditions have been acknowledging the revealed nature of the vadas. Manu, regarded as the supreme authority amongst the Rishies, delared that having taken out terms from the divine speech (Veda) names were ascribed to all objects and activities. The question of historical references in the Vedas cannot be solved by the internal evidence from the Vedas which are beyond the limitation of time and space. Accordinly, on the basis of one or two words, apparently referring to same person or place, no logical conclusion could be arrived at.

Printed and published by Sh. N.M. Walecha Secretary on behalf of Arya Samaj, Rajinder Nagar and printed at Gurmat Printing Press, 1337, Sangatrashan, Pahar Ganj, New Delhi-55 Ph. : 23561625 and published at Arya Samaj, Rajinder Nagar, New Delhi-110060. *Editor :* **Dr. Kailash Chandra Shastri**